The Academic
International Journal of Multidisciplinary Research

An Online Peer Reviewed / Refereed Journal
Volume 4 | Issue 3 | March 2026
ISSN: 2583-973X (Online), SJIF IF: 5.6
Website: www.theacademic.in

डिजिटल शिक्षा के युग में एकात्म मानववाद द्वारा आकारित मानवीय मूल्य

विजय

सहायक प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, राजकीय महाविद्यालय, लोहारू (हरियाणा),

ईमेल: 2430phdplsc.vijay5@kuk.ac.in

DOI : https://doi.org/10.5281/zenodo.19543325

ARTICLE DETAILS

Research Paper

Accepted: 29-03-2026

Published: 10-04-2026

Keywords:

समाजवाद, पूंजीवाद, सामूहिकता, समग्रता, एकात्म मानववाद, मूल्य-आधारित शिक्षा, डिजिटल शिक्षा, लोककल्याण, नैतिकता, समावेशन

ABSTRACT

भारतीय ज्ञान परंपरा केवल दार्शनिक विमर्श तक सीमित नहीं है, बल्कि यह शासन, समाज और राजनीति के नैतिक, सांस्कृतिक एवं मानवीय मूल्यों की सजीव परंपरा है। राजनीतिक विज्ञान के क्षेत्र में भारतीय दृष्टिकोण पश्चिमी सत्ता-केंद्रित अवधारणाओं से भिन्न है जो नैतिकता, धर्म तथा लोककल्याण को राजनीति का मूलाधार मानता है। ऋग्वेद, महाभारत, भगवद्गीता तथा अर्थशास्त्र जैसे प्राचीन ग्रंथों में राजनीति को 'राजधर्म' और 'लोकमंगल' की संकल्पना से जोड़ा गया है, जहाँ शासन का उद्देश्य मात्र सत्ता-संचालन नहीं, बल्कि समाज के समग्र विकास और नैतिक अनुशासन की स्थापना है। इस परंपरा की आधुनिक व्याख्या पंडित दीनदयाल उपाध्याय द्वारा प्रतिपादित 'एकात्म मानववाद' में स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। एकात्म मानववाद भारतीय चिंतन की उस निरंतरता का प्रतीक है, जो व्यक्ति, समाज और प्रकृति के मध्य सामंजस्य को राजनीति का आधार मानता है। यह दर्शन पूँजीवाद और समाजवाद दोनों व्यवस्थाओं की सीमाओं का समालोचनात्मक विश्लेषण करते हुए एक ऐसी समन्वित व्यवस्था का प्रस्ताव करता है, जिसमें राजनीति का उद्देश्य केवल आर्थिक विकास नहीं, बल्कि मानव के चारों आयामों—शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा—का संतुलित विकास हो। इस दृष्टिकोण में राज्य साधन है, साध्य नहीं; और लोककल्याण सर्वोपरि मूल्य है। डिजिटल शिक्षा के समकालीन परिप्रेक्ष्य में एकात्म मानववाद एक मानवीय रूपरेखा प्रदान करता है, जो तकनीक को साधन मानते हुए उसे मूल्य-आधारित उद्देश्यों से संबद्ध करता है। यह दृष्टिकोण इंगित करता है कि ज्ञान का डिजिटलीकरण तभी सार्थक है जब वह व्यक्तित्व के बहुआयामी विकास, सामाजिक समरसता तथा नैतिक उत्तरदायित्व को सुदृढ़ करे। अतः एकात्म मानववाद और डिजिटल शिक्षा का समन्वय एक ऐसी शिक्षण-दृष्टि का निर्माण करता है, जो तकनीकी प्रगति को मानवीय मूल्यों के साथ संतुलित करते हुए समावेशी, उत्तरदायी और सांस्कृतिक रूप से संवेदनशील शैक्षिक व्यवस्था की स्थापना की ओर

उन्मुख है।

परिचय- भारतीय ज्ञान परंपरा में निहित राजनीतिक दृष्टि, विशेषकर एकात्म मानववाद के माध्यम से, राजनीति को नैतिकता, धर्म और लोकहित से जोड़ती है। यह दृष्टिकोण भारतीय राजनीतिक विज्ञान को उसकी मौलिक पहचान प्रदान करता है तथा भौतिक प्रगति के साथ आध्यात्मिक, सांस्कृतिक और सामाजिक संतुलन की दिशा में मार्गदर्शन करता है। यह विचार शीतयुद्ध काल में प्रचलित पूंजीवाद और साम्यवाद दोनों की सीमाओं को उजागर करता है। एकात्म मानववाद यह स्पष्ट करता है कि किसी एकांगी विचारधारा से भारतीय समाज की समस्त समस्याओं का समाधान नहीं हो सकता। पूंजीवाद जहाँ धनाढ्य वर्ग के हितों को प्राथमिकता देता है और केवल आर्थिक पक्ष को महत्व देता है, वहीं साम्यवाद श्रमिक वर्ग पर केंद्रित रहता है एवम् आर्थिक दृष्टिकोण अपनाता है। इन दोनों के बीच कुछ लोग ऐसे भी थे जो पूंजीवाद और लोकतंत्र का संयोजन करके समस्याओं का समाधान खोजना चाहते थे, जिससे स्वतंत्रता पर बल दिया गया, और कुछ लोग लोकतंत्र और समाजवाद पर जोर देना चाहते थे, जिससे समानता पर बल दिया गया। लेकिन इन दोनों महत्वपूर्ण पहलुओं का एक साथ समाधान किसी भी विचारधारा में नहीं किया गया।

1991 में शीतयुद्ध के पतन के बाद फ्रांसिस फुकुयामा ने "इतिहास का अंत" के माध्यम से लोकतंत्र और उदारवादी संस्थाओं की स्वीकृति को स्वीकार किया और उदारवाद की विजय घोषित की। पूंजीवाद ने राष्ट्रवाद का विरोध किया, किंतु स्वयं अनेक तरीकों से अपना आर्थिक साम्राज्यवाद चलाया, जिसमें उसका स्वार्थ छिपा हुआ था। साम्यवाद और पूंजीवादी तंत्र दोनों ही भारतीय समाज की सांस्कृतिक विविधता और सामाजिक जटिलता को नहीं समझ पाते। इसलिए किसी ऐसे भारतीय विचार की आवश्यकता है जो भारत की आत्मा के अनुरूप हो जिससे भारतीय समाज की सामाजिक – आर्थिक समस्याऔं का समाधान किया जा सके।

वर्तमान भारत में अनेक सामाजिक एवं राजनीतिक समस्याएँ ऐसी हैं, जिनका समाधान किसी भी पश्चिमी वैचारिक परंपरा के माध्यम से संभव नहीं है। भारतीय समाज में मध्यमवर्ग की समस्या सबसे प्रमुख है। यह वर्ग न तो पूर्णतः शोषक है और न ही पूर्णतः शोषित। कभी यह संस्कृति और सत्ता का वाहक रहा है, तो कभी आर्थिक दबावों से पीड़ित। यह वर्ग समाज में संतुलनकारी भूमिका निभाता है और भारतीय समाज में इसका स्थान केंद्रीय है। मार्क्स का "सर्वहारा" सिद्धांत इस वर्ग की स्थिति को समझने में असफल रहता है, क्योंकि वह आर्थिक तत्वों को अधिक महत्व देता है और सांस्कृतिक तत्वों की उपेक्षा करता है। इसके विपरीत, पूंजीवाद अन्य समाजों पर अपनी आर्थिक संस्कृति और मूल्य थोपता है, जिससे भारतीय मध्यमवर्ग अपनी सांस्कृतिक जड़ों से कटता चला जाता है। पूंजीवादी संस्कृति ने भारतीय मध्यमवर्ग को सबसे अधिक अपनी आर्थिक गतिविधियों से दूर किया है।

वैश्वीकरण तथा मैकडोनल्डीकरण की संस्कृति ने भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों और जीवनशैली पर गहरा प्रभाव डाला है। मैकडोनल्डीकरण वैश्विक ब्रांडों को बढ़ावा देने वाली उपभोक्तावादी संस्कृति का प्रतीक है, जो स्थानीय बाजारों, पारंपरिक उद्योगों और स्वदेशी उत्पादों को हाशिए पर ढकेल देती है। इसका सबसे अधिक प्रभाव भारतीय मध्यमवर्ग पर पड़ा है, जो अब विदेशी जीवनशैली और उपभोग की आदतों का अनुकरण करने लगा है।

पूंजीवादी व्यवस्था “सबसे योग्य का अस्तित्व” या “मत्स्य न्याय” के सिद्धांत पर आधारित है, जिसमें शक्तिशाली का वर्चस्व बना रहता है, जिससे समाज का समग्र विकास बाधित होता है। यदि यह प्रवृत्ति बनी रही तो जो व्यक्ति या वर्ग आर्थिक रूप से कमजोर है, उसका अस्तित्व संकट में पड़ जाएगा। भारतीय समस्याओं के समाधान में समस्या तब और गंभीर हो जाती है, जब उदारवादी विचार भारत के “स्व” के विचार को समाप्त कर रहे हैं और भारतीय समाज स्वयं के रूप में पिछड़ता जा रहा है।

इसके विपरीत, एकात्म मानववाद का विश्वास है कि समाज केवल आर्थिक प्रतिस्पर्धा से नहीं, बल्कि सहयोग, कर्तव्य, समरसता और संतुलन से संचालित होता है। यह दृष्टि सभी वर्गों के समान कल्याण “सर्वजन हिताय, सर्वजन सुखाय” की बात करती है।

वर्तमान समय में भारतीय समाज की जीवनशैली में सामुदायिक और व्यक्तिवादी दृष्टिकोणों के बीच एक गहरा संघर्ष दिखाई देता है। यद्यपि व्यक्तिवादी दृष्टिकोण पश्चिमी चिंतन की देन है, तथापि पश्चिम का कोई भी विचार इस सामाजिक समस्या का समाधान प्रस्तुत करने में सफल नहीं हुआ है। व्यक्तिवाद पश्चिमी चिंतन की मूल विशेषता है, जिसमें व्यक्ति को समाज की मूल इकाई माना गया है। इस दृष्टिकोण में समाज और राज्य को व्यक्ति की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अस्तित्व में आया माना जाता है। व्यक्ति की स्वतंत्रता, अधिकार और सुख इसकी प्रमुख धुरी हैं। समाज को केवल एक अनुबंध के रूप में देखा गया है तथा परिवार तक को एक संस्थागत इकाई के बजाय व्यक्तिगत अनुभव का परिणाम माना गया। जैसे आर्थिक क्षेत्र में हस्तक्षेप सिद्धांत के नाम पर राज्य का हस्तक्षेप न्यूनतम किया गया, वैसे ही व्यक्तिगत जीवन में भी समाज की भूमिका सीमित कर दी गई।

इसके विपरीत, सामुदायवाद यह मानता है कि मनुष्य का अस्तित्व समाज से पृथक नहीं है। व्यक्ति एक सामाजिक और नैतिक प्राणी है, जिसकी पहचान और मूल्य समाज की सांस्कृतिक परंपराओं, संस्कृति और नैतिक उत्तरदायित्वों से निर्मित होते हैं। सामुदायवाद इस बात पर बल देता है कि व्यक्ति का कल्याण समुदाय के कल्याण से जुड़ा हुआ है। दोनों परस्पर विरोधी नहीं, बल्कि पूरक हैं।

आज का भारतीय समाज इन दोनों स्थितियों के संक्रमणकाल में है। एक ओर शहरीकरण, तकनीकी विकास और उपभोक्तावाद ने व्यक्ति को आकर्षित बनाया है, तो दूसरी ओर पारिवारिक और सामुदायिक मूल्य क्षीण हो रहे हैं। शिक्षित व्यक्ति गाँव से शहर की ओर जा रहा है, और समाज संयुक्त परिवार से एकल परिवार की ओर बढ़ रहा है। इस परिवर्तन ने सामाजिक जीवन में असंतुलन उत्पन्न किया है।

किसी व्यक्ति के निर्माण में उसके संयुक्त परिवार और समुदाय का अत्यंत महत्वपूर्ण योगदान होता है। जिस व्यक्ति ने गाँव या परिवार के सहयोग से शिक्षा, संस्कार और समझ प्राप्त की है, उसका विकास केवल व्यक्तिगत प्रयासों का परिणाम नहीं होता, बल्कि यह सामूहिक सहयोग और सामाजिक पूंजी का प्रतिफल होता है। किंतु जब ऐसा व्यक्ति सामाजिक गतिशीलता के कारण अपने परिवेश से अलग हो जाता है, जैसे कि गाँव छोड़कर शहर चला जाता है या संयुक्त परिवार से अलग जीवन अपनाता है, तो इसके परिणामस्वरूप परिवार और समुदाय के शेष सदस्यों को सामाजिक और आर्थिक हानि का सामना करना पड़ता है।

ऐसी स्थिति में यह आवश्यक है कि समाज और राज्य दोनों अपने दायित्व को समझें। उन्हें न केवल व्यक्ति की स्वतंत्रता की रक्षा करनी चाहिए, बल्कि यह भी सुनिश्चित करना चाहिए कि समाज में सामाजिक संवेदना, परस्पर सहयोग और समग्र कल्याण की भावना बनी रहे। परंतु दुर्भाग्यवश, आज की आर्थिक और सामाजिक नीतियाँ व्यक्ति को अलग-थलग (पृथकवादी) कर रही हैं।

ऐसे में आवश्यकता है किसी ऐसे विचार की, जो समरसता और संतुलन स्थापित कर सके। ऐसा विचार जो आधुनिकता और परंपरा, व्यक्ति और समाज, आत्मनिर्भरता और सहयोग—इन सभी के मध्य समन्वय स्थापित करे।

वर्तमान भारतीय समाज की एक प्रमुख समस्या भ्रष्टाचार है, जो प्रशासनिक व्यवस्था का हिस्सा बन चुका है। प्रशासनिक समस्याएँ प्रत्येक देश की सामाजिक और सांस्कृतिक स्थिति के अनुसार उत्पन्न होती हैं।

एक महत्वपूर्ण पहलू यह है कि जब समाज में कोई वस्तु या सेवा सांस्कृतिक रूप से स्वीकार्य होती है, तो उस पर भ्रष्टाचार का प्रभाव नगण्य होता है। उदाहरण के तौर पर, यदि कोई उत्पाद या सेवा सांस्कृतिक दृष्टि से सम्मानित है, तो उसके उत्पादन से लेकर अंतिम उपयोग तक भ्रष्टाचार का स्तर अपेक्षाकृत कम होता है। एकात्म मानववाद के अनुसार हमें स्वदेशी उत्पादों को बढ़ावा देने और उनकी जीवनशैली में प्रयोग को प्रोत्साहित करने की दिशा में काम करना चाहिए। इससे न केवल आर्थिक भ्रष्टाचार कम हो सकता है, बल्कि समाज में सांस्कृतिक धरोहर और आत्मनिर्भरता की भावना भी मजबूत हो सकती है। ऐसे उत्पादों का समर्थन किया जाना चाहिए, जो समाज में सांस्कृतिक रूप से स्वीकार्य हों और जिनसे नकारात्मक प्रभाव कम से कम हो।

भारतीय सामाजिक व्यवस्था से जुड़ी एक और चुनौती, जिसे पश्चिमी दृष्टिकोण में पर्याप्त महत्व नहीं दिया जाता, वह है लघु उद्योगों की स्थिति। आज भी लघु उद्योग भारतीय समाज की रीढ़ हैं, लेकिन इन उद्योगों को सरकारी नौकरियों के मुकाबले समाज में कम महत्व दिया जाता है। लघु उद्योग न केवल समाज के आर्थिक विकास और आत्मनिर्भरता के लिए आवश्यक हैं, बल्कि वे रोजगार के अवसर भी उत्पन्न करते हैं। इसलिए, हमें समाज में लघु उद्योगों के महत्व को समझना और इन्हें सशक्त बनाने की दिशा में काम करना चाहिए। यदि हम लघु उद्योगों को सही सम्मान और समर्थन प्रदान करते हैं, तो यह न केवल हमारी आर्थिक व्यवस्था को सशक्त बनाएगा, बल्कि भारतीय समाज की संरचना को भी मजबूत करेगा।

एकात्म मानववाद केवल एक आर्थिक या राजनीतिक विचारधारा नहीं, बल्कि एक समग्र जीवन-दर्शन है, जो व्यक्ति, समाज और प्रकृति के बीच संतुलन स्थापित करने की ओर अग्रसर है। यह सिद्धांत हमें यह समझने का अवसर देता है कि मनुष्य का वास्तविक विकास तभी संभव है, जब वह अपने व्यक्तिगत स्वार्थ को समाज और प्रकृति के व्यापक हित से जोड़ सके। पं. दीनदयाल उपाध्याय का यह दृष्टिकोण न केवल समाज में समरसता और आत्मनिर्भरता की नींव रखता है, बल्कि यह भी सुनिश्चित करता है कि हर व्यक्ति का कल्याण केवल आर्थिक उन्नति तक सीमित न रहे, बल्कि उसका आध्यात्मिक और सामाजिक समग्र विकास भी हो।

स्वदेशी उत्पादन और ग्राम-आधारित अर्थव्यवस्था केवल आर्थिक रणनीतियाँ नहीं हैं, बल्कि यह एक जीवन-पद्धति है, जो भारतीय समाज के पारंपरिक मूल्यों और सांस्कृतिक पहचान को पुनः सशक्त करती है। यदि भारत अपने सामाजिक और आर्थिक ढाँचे को एकात्म मानववाद के सिद्धांतों पर आधारित करता है, जैसे कि ग्रामोद्योग, स्थानीय रोजगार और स्वदेशी विकास मॉडल, तो यह पलायन, बेरोजगारी और सामाजिक असंतुलन जैसी समस्याओं के समाधान की दिशा में ठोस कदम हो सकता है।

आज, जब आधुनिक पूंजीवाद ने न केवल असमानता और उपभोक्तावाद को बढ़ावा दिया है, बल्कि पारिवारिक और सांस्कृतिक बंधनों को भी कमजोर किया है, तब पं. दीनदयाल उपाध्याय का 'एकात्म मानववाद' की अवधारणा भारतीय समाज के लिए एक प्रासंगिक और स्थायी समाधान प्रस्तुत करती है।

आधुनिक विकास के साथ-साथ यदि हम स्वदेशी अर्थनीति और ग्राम-आधारित उद्योगों को बढ़ावा दें, तो न केवल आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर समाज बनेगा, बल्कि हमारी सांस्कृतिक धरोहर और पारिवारिक मूल्य भी सुरक्षित रहेंगे। इसके साथ ही, यह समाज में व्याप्त असमानता और सामाजिक समस्याओं का भी निराकरण करेगा।

अतः भारतीय नीति-निर्माताओं को इस दृष्टिकोण को अपनाने की आवश्यकता है जो समाज की स्वाभाविक संरचना, मानवीय संवेदनाओं और उत्पादन प्रणाली के बीच सामंजस्य स्थापित करे। केवल औद्योगिकीकरण से परे, भारतीय परिप्रेक्ष्य में वास्तविक विकास का उद्देश्य एक मानवकेंद्रित, सामूहिक और संतुलित समाज का निर्माण होना चाहिए। यही एकात्म मानववाद का वास्तविक सार है, जो भारतीय समाज को समग्र रूप से सशक्त बनाने का मार्गदर्शन प्रदान करता है।

एकात्म मानववाद ऐसा भारतीय विचार है जो पश्चिम से आयातित विचारों से उत्पन्न समस्याओं को सुलझाने में समर्थ है। यह न तो पूंजीवाद की तरह स्वार्थी है और न ही साम्यवाद की तरह भौतिकवादी। यह विचार व्यक्ति, समाज और प्रकृति के इन तीनों के एकत्व की बात करता है।

वर्तमान युग डिजिटल क्रांति का युग है। शिक्षा का स्वरूप अब पारंपरिक कक्षा-पद्धति से आगे बढ़कर ऑनलाइन प्लेटफॉर्म, ई-लर्निंग, वर्चुअल कक्षाएँ, कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) और स्वचालित शिक्षण प्रणालियों तक विस्तृत हो चुका है। डिजिटल शिक्षा ने ज्ञान को सार्वभौमिक बनाया है, किंतु इसके साथ मूल्य-संकट, व्यक्तिवाद, प्रतिस्पर्धात्मकता और सांस्कृतिक विघटन जैसी चुनौतियाँ भी उत्पन्न हुई हैं।

एकात्म मानववाद के आलोक में डिजिटल शिक्षा को केवल तकनीकी साधन के रूप में नहीं, बल्कि मानव-केंद्रित विकास की प्रक्रिया के रूप में देखा जाना चाहिए। यदि शिक्षा केवल सूचना-प्रदान तक सीमित रह जाए और उसमें नैतिकता, चरित्र-निर्माण तथा सामाजिक उत्तरदायित्व का समावेश न हो, तो वह अधूरी है। अतः डिजिटल शिक्षा को भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों, लोककल्याण की भावना तथा समरस सामाजिक दृष्टिकोण से जोड़ा जाना आवश्यक है।

शीतयुद्ध काल में प्रचलित पूंजीवाद और साम्यवाद दोनों की सीमाओं को एकात्म मानववाद उजागर करता है। आज डिजिटल शिक्षा का वैश्विक ढाँचा भी बड़े पैमाने पर बाजार-आधारित है, जहाँ ज्ञान को 'उत्पाद' और विद्यार्थी को 'उपभोक्ता' के रूप में देखा जाने लगा है। यह प्रवृत्ति भारतीय शिक्षा की आत्मा के विपरीत है। शिक्षा का उद्देश्य केवल रोजगार या आर्थिक प्रतिस्पर्धा नहीं, बल्कि समग्र व्यक्तित्व विकास होना चाहिए।

1991 के पश्चात वैश्वीकरण और उदारवादी नीतियों के प्रभाव से डिजिटल माध्यमों का तीव्र विस्तार हुआ। वैश्विक ऑनलाइन प्लेटफॉर्मों ने शिक्षा को सुलभ बनाया, परंतु साथ ही सांस्कृतिक एकरूपता और मूल्य-क्षरण का संकट भी उत्पन्न किया।

पूंजीवादी ढाँचे में डिजिटल शिक्षा प्रायः लाभ-केंद्रित बन जाती है। इसके विपरीत, एकात्म मानववाद यह स्पष्ट करता है कि तकनीक साधन है, साध्य नहीं।

भारतीय समाज में मध्यमवर्ग डिजिटल परिवर्तन से सर्वाधिक प्रभावित हुआ है। ऑनलाइन शिक्षा, प्रतियोगी परीक्षाओं की तैयारी, ई-कौशल प्रशिक्षण और वर्चुअल कार्य-संस्कृति ने मध्यमवर्ग को नए अवसर प्रदान किए हैं, किंतु इसके साथ पारिवारिक और सामुदायिक संबंधों में दूरी भी बढ़ी है। डिजिटल माध्यमों के अत्यधिक उपयोग ने सामाजिक अंतःक्रिया को आभासी बना दिया है। एकात्म मानववाद इस स्थिति में संतुलन की आवश्यकता पर बल देता है। वैश्वीकरण की संस्कृति अब डिजिटल प्लेटफॉर्मों के माध्यम से और अधिक प्रभावी हो चुकी है। विदेशी शैक्षिक सामग्री, वैश्विक पाठ्यक्रम और उपभोक्तावादी जीवनशैली का प्रचार भारतीय विद्यार्थियों की मानसिकता को प्रभावित कर रहा है। यदि डिजिटल शिक्षा भारतीय ज्ञान परंपरा, स्थानीय भाषाओं और स्वदेशी संदर्भों से कट जाएगी, तो सांस्कृतिक असंतुलन उत्पन्न होगा।

एकात्म मानववाद के विचार के अनुसार यदि डिजिटल शिक्षा को ग्राम-आधारित अर्थव्यवस्था, लघु उद्योगों, कौशल विकास और स्थानीय रोजगार से जोड़ा जाए, तो यह आत्मनिर्भर भारत के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है। ऑनलाइन कौशल प्रशिक्षण, ई-गवर्नेंस, डिजिटल पारदर्शिता और ग्रामीण क्षेत्रों में ई-लर्निंग की सुविधा सामाजिक समानता को सुदृढ़ कर सकती है।

व्यक्तिवाद और सामुदायिकता के संघर्ष में डिजिटल शिक्षा एक महत्वपूर्ण कारक बन गई है। जहाँ एक ओर यह व्यक्ति को स्वतंत्र रूप से सीखने का अवसर देती है, वहीं दूसरी ओर सामूहिक शिक्षण और सामाजिक सहभागिता को कमजोर भी कर सकती है। एकात्म मानववाद इस द्वंद्व का समाधान प्रस्तुत करता है—व्यक्ति की स्वतंत्रता और समाज की समरसता दोनों का संतुलन।

भ्रष्टाचार और प्रशासनिक जटिलताओं को कम करने में भी डिजिटल शिक्षा और डिजिटल प्रशासन सहायक हो सकते हैं। यदि शैक्षिक प्रणाली पारदर्शी, उत्तरदायी और मूल्य-आधारित हो, तो समाज में नैतिक अनुशासन को बल मिलेगा।

अतः डिजिटल शिक्षा का उद्देश्य केवल तकनीकी दक्षता नहीं, बल्कि मूल्य-संपन्न, सांस्कृतिक रूप से जागरूक और सामाजिक रूप से उत्तरदायी नागरिक का निर्माण होना चाहिए। यही एकात्म मानववाद का सार है—समग्र विकास, संतुलन और लोककल्याण।

निष्कर्षतः एकात्म मानववाद ऐसा भारतीय विचार है जो आधुनिक डिजिटल युग की चुनौतियों का संतुलित समाधान प्रस्तुत करता है। यह न तो पूंजीवाद की भाँति केवल आर्थिक लाभ पर आधारित है और न ही साम्यवाद की तरह भौतिक समानता तक सीमित। यह व्यक्ति, समाज, प्रकृति और अब डिजिटल तकनीक—इन सभी के एकत्व और संतुलन की बात करता है।

यदि डिजिटल शिक्षा को एकात्म मानववाद द्वारा आकरित मूल्यों—समरसता, स्वदेशी, आत्मनिर्भरता, नैतिकता और लोककल्याण—से जोड़ा जाए, तो भारतीय शिक्षा व्यवस्था न केवल आधुनिक बनेगी, बल्कि सांस्कृतिक रूप से सशक्त और मूल्य-सम्पन्न भी रहेगी।

संदर्भ सूची

1. एकात्म मानववाद, दीनदयाल उपाध्याय, प्रभात प्रकाशन, पृष्ठ 15

2. एकात्म मानववाद, दीनदयाल उपाध्याय, प्रभात प्रकाशन, पृष्ठ 84

3. पंडित दीनदयाल उपाध्याय (1965). *एकात्म मानववाद*। नई दिल्ली: सुरुचि प्रकाशन।

4. पडित दीनदयाल उपाध्याय (1967). *राष्ट्र जीवन की दिशा*। नई दिल्ली: लोकहित प्रकाशन।

5. दत्तोपंत ठेंगड़ी (2006). *एकात्म मानवदर्शन: एक अध्ययन*। नई दिल्ली: सुरुचि प्रकाशन।

7 माधव सदाशिव गोलवलकर (1966). *बंच ऑफ थॉट्स*। नागपुर: साहित्य प्रकाशन।

6. (भारतीय सांस्कृतिक राष्ट्रवाद और समन्वित दृष्टिकोण के संदर्भ में उपयोगी)

7. ए.के. सिन्हा (2014). *Integral Humanism: Theory and Practice*। नई दिल्ली: प्रकाशन विभाग।